



2026:AHC:42083

उच्च न्यायालय इलाहाबाद
द्वितीय अपील संख्या - 777/ 1981
श्री देवी दयाल ...अपीलार्थी(गण)
बनाम
नगर महापालिका कानपुर ...प्रत्यर्थी(गण)

अपीलार्थी(गण) के अधिवक्ता :पी.डी. कौशिक, आर.सी. सिन्हा, यद्वेश यादव
प्रत्यर्थी(गण) के अधिवक्ता :लालजी सिन्हा, रमेश उपाध्याय, शशि शेखर मिश्रा

एएफआर

सुरक्षित दिनांक 18.2.2026

निर्णय दिनांक 25.2.2026

न्यायालय संख्या - 32

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी,

1. यह वादी की द्वितीय अपील है, जो दिनांक 29.5.1976 के निर्णय के विरुद्ध दायर की गई है, जिसके द्वारा उसके द्वारा दायर एक वाद को खारिज कर दिया गया था और उसकी अपील को भी प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा दिनांक 18.12.1980 के निर्णय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था।

2. वादी/अपीलार्थी ने प्रतिवादी संख्या 1 और 2 (प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2) के विरुद्ध एक वाद संख्या 2154 वर्ष 1971 स्थायी व्यादेश के लिए दायर किया है, जिसमें उन्हें फसल काटने से रोकने और विवादित भूखंडों पर उसके कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकने की मांग की गई है।

3. अपीलार्थी/वादी ने एक मामला यह बनाया है कि वह स्वामी, नगर महापालिका, कानपुर (प्रतिवादी संख्या 1) के कृषि भूखंडों (वाद वाले भूखंडों) में एक किरायेदार था।

4. बाद में, स्वीकृत रूप से, वाद की भूमि कानपुर विकास प्राधिकरण को हस्तांतरित कर दी गई थी। वादी का दावा मूल रूप से इस कथन पर आधारित था कि वाद की भूमि प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा उसे कृषि के लिए मौखिक रूप से एक किरायेदार के रूप में दी गई थी और उसके बाद उसका कब्जा कई वर्षों तक जारी रहा और उसने लगान का भुगतान भी किया, और उसकी रसीदें जारी की गई थीं, हालांकि स्वीकृत रूप से रसीदों के अलावा, वादी ने रिकॉर्ड पर ऐसा कोई दस्तावेज, जैसे कि पट्टा, प्रस्तुत नहीं किया है कि वह कृषि भूखंडों का किरायेदार था।

5. इसके विपरीत, प्रतिवादी ने अपने लिखित कथन में उल्लेख किया है कि वादी एक फसली वर्ष के लिए अनुज्ञप्तिधारी (लाइसेंसी) था और तत्पश्चात वह वाद की भूमि पर अतिक्रामक के रूप में काबिज था। लिखित कथन का पैरा 14 प्रासंगिक होने के कारण आगे उल्लिखित है:

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



14. यह कि वादी एक अतिक्रामक है और किसी भी व्यादेश का दावा करने का हकदार नहीं है। वादी को विवादित भूमि पर किसी भी हित का दावा करने का कोई अधिकार नहीं है। वाद विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 41 द्वारा वर्जित है।

6. विद्वान विचारण न्यायालय ने 9 विवादक विरचित किए और विवादक संख्या 2 सबसे प्रासंगिक होने के कारण आगे उल्लिखित है:-

“क्या वादी वाद के भूखंडों का किरायेदार है जैसा कि उसके द्वारा आरोप लगाया गया है या क्या वादी अनुज्ञप्तिधारी है जैसा कि नगर पालिका द्वारा लिखित कथन के पैराग्राफ संख्या 14 में आरोप लगाया गया है”

7. विद्वान विचारण न्यायालय ने निर्णय दिनांक 29.5.1976 द्वारा वाद को हर्जाने के साथ खारिज कर दिया और यह निष्कर्ष दिया कि वादी विवादित भूखंडों पर प्रतिवादी संख्या 1 की अनुमति से केवल एक वर्ष के लिए कब्जे में आया था, इसलिए, वादी प्रतिवादी संख्या 1 का अनुज्ञप्तिधारी था न कि किरायेदार।

8. वादी/अपीलार्थी ने निर्णय दिनांक 29.5.1976 से क्षुब्ध होकर द्वितीय अपर सिविल जज, कानपुर के समक्ष एक प्रथम अपील संख्या 275 वर्ष 1976 दायर की, जिसे निर्णय दिनांक 18.12.1980 द्वारा खारिज कर दिया गया और विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए इस निष्कर्ष को बरकरार रखा गया कि वादी/अपीलार्थी प्रतिवादी का किरायेदार था। यह भी विशिष्ट रूप से माना गया कि वादी/अपीलार्थी स्वयं को सीरदार, भूमिधर या असामी होने का दावा नहीं करता है, हालांकि यह नोट किया गया था कि वाद की भूमि के कुछ हिस्से के संबंध में कुछ राजस्व अभिलेखों में वादी को असामी के रूप में दिखाया गया था, हालांकि स्वीकृत रूप से यह अपीलार्थी का मामला नहीं था।

9. सबसे बेहतर मामला यह होगा कि प्रतिवादी ने वाद की भूमि को फसली वर्ष 1372 में केवल एक वर्ष के लिए खेती के लिए अनुज्ञप्तिधारी के रूप में दिया था, हालांकि यह निष्कर्ष दिया गया कि वादी एक वर्ष के लिए प्रतिवादी का असामी हो सकता था, लेकिन वे अधिकार भी जारी नहीं रहे। अन्यथा, प्रथम अपीलीय न्यायालय का यह मत था कि ऐसा संप्रेक्षण यह साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा कि वादी असामी बन गया और अंततः प्रथम अपीलीय न्यायालय ने घोषित किया है कि वादी वाद की भूमि का न तो किरायेदार था और न ही असामी और विवादित भूमि पर वादी का कब्जा केवल एक अतिक्रामक का होगा।

10. प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय दिनांक 18.12.1980 वर्तमान द्वितीय अपील के माध्यम से चुनौती के अधीन है, जो वर्ष 1981 में दायर की गई थी, अर्थात्, पिछले 45 वर्षों से लंबित है।

11. इस न्यायालय की एक समकक्षी पीठ ने वर्तमान द्वितीय अपील को अपील के ज्ञापन के साथ संलग्न परिशिष्ट के पैराग्राफ संख्या 1 और 2 में विरचित विधि के सारवान प्रश्नों पर आदेश दिनांक 9.9.1981 द्वारा स्वीकार किया है।

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



12. उपरोक्त पृष्ठभूमि में, न्यायालय ने अपील के परिशिष्ट का अवलोकन किया और क्रम संख्या 1 और 2 पर विरचित विधि के सारवान प्रश्न आगे पुनरुत्पादित हैं:

“विधि के सारवान प्रश्न

1. क्योंकि स्वीकृत रूप से वादी असामी था और विद्वान अधीनस्थ न्यायालयों ने रिकॉर्ड पर प्रत्यक्ष रूप से यह निष्कर्ष दर्ज करने के बाद भी कि प्रतिवादियों द्वारा स्वयं वादी को विवादित भूखंडों पर असामी अधिकार प्रदान किए गए थे, वाद को डिफ्री न करके गंभीर अवैधता की है।

2. क्योंकि वादी का वाद प्रतिवादियों द्वारा स्वयं की गई स्वीकृतियों पर डिफ्री किया जाना चाहिए था और प्रतिवादियों को वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में वादी के किरायेदारी अधिकारों को चुनौती देने से विबंधित किया गया था।”

13. न्यायालय पाता है कि विधि के उपर्युक्त प्रश्नों में प्रयुक्त शब्द उचित प्रारूप में नहीं हैं, क्योंकि यह 'क्योंकि' शब्द से शुरू होता है जबकि इसे 'क्या' से शुरू होना चाहिए था।

14. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री आर.सी. सिन्हा ने तर्क दिया कि यद्यपि विधि के उपर्युक्त सारवान प्रश्न अच्छी शब्दावली में नहीं हैं, फिर भी इन्हें पुनर्गठित किया जा सकता है।

15. प्रतिपक्षी प्रत्यर्थियों की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ, इसलिए, न्यायालय इस बात पर विचार करने के लिए आगे बढ़ता है कि क्या विधि के उपर्युक्त संदर्भित प्रश्न वास्तव में विधि के सारवान प्रश्न हैं या नहीं।

16. इससे पहले कि मैं उपर्युक्त संदर्भित मुद्दे पर विचार करने के लिए आगे बढ़ूँ, मैं उच्चतम न्यायालय द्वारा विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से चंद्रभान (मृतक) और अन्य बनाम सरस्वती और अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1273 के मामले में पारित एक निर्णय को संज्ञान में लेता हूँ, जिसमें द्वितीय अपील के उद्देश्य से विधि का सारवान प्रश्न क्या होगा, इस संबंध में कानून पर चर्चा की गई थी और इसका प्रासंगिक हिस्सा आगे पुनरुत्पादित है:

“31. 'सारवान' होने के लिए, विधि का एक प्रश्न विचारणीय होना चाहिए, जो देश की विधि या किसी बाध्यकारी मिसाल द्वारा पहले से तय न हो, और मामले के निर्णय पर उसका भौतिक प्रभाव होना चाहिए, यदि उसका उत्तर किसी भी तरह से दिया जाए, जहाँ तक कि उसके समक्ष पक्षकारों के अधिकारों का संबंध है। मामले में 'अंतर्ग्रस्त' विधि का प्रश्न होने के लिए सबसे पहले, अभिवचनों में उसके लिए एक आधार होना चाहिए और प्रश्न तथ्यों के न्यायालय द्वारा निकाले गए तथ्यों के पुष्ट निष्कर्षों से उभरना चाहिए और मामले के न्यायसंगत और उचित निर्णय के लिए विधि के उस प्रश्न को तय करना आवश्यक होना चाहिए। उच्च न्यायालय के समक्ष पहली बार उठाया गया एक पूरी तरह से नया बिंदु मामले में अंतर्ग्रस्त प्रश्न नहीं है जब तक कि वह मामले की जड़ तक न जाता हो। इसलिए, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा कि विधि का कोई प्रश्न सारवान है और मामले में अंतर्ग्रस्त है

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



या नहीं, सर्वोपरि विचार सभी चरणों में न्याय करने के अनिवार्य दायित्व और किसी भी वाद के जीवन को लंबा खींचने से बचने की अनिवार्य आवश्यकता के बीच एक विवेकपूर्ण संतुलन बनाने की आवश्यकता है। (देखें संतोष हजारी बनाम पुरुषोत्तम तिवारी [संतोष हजारी बनाम पुरुषोत्तम तिवारी, (2001) 3 एससीसी 179] 1)

32. इस मामले के लिए प्रासंगिक सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 से संबंधित सिद्धांतों को इस प्रकार संक्षेपित किया जा सकता है:

32.1. किसी दस्तावेज के विवरण या अंतर्वस्तु से तथ्य का अनुमान तथ्य का एक प्रश्न है। लेकिन किसी दस्तावेज की शर्तों का कानूनी प्रभाव विधि का एक प्रश्न है। किसी दस्तावेज का निर्वचन जिसमें विधि के किसी सिद्धांत का अनुप्रयोग अंतर्गस्त हो, वह भी विधि का एक प्रश्न है। इसलिए, जब किसी दस्तावेज के निर्वचन में दस्तावेज का गलत निर्वचन या विधि के किसी सिद्धांत का गलत अनुप्रयोग होता है, तो इससे विधि का एक प्रश्न उत्पन्न होता है।

32.2. उच्च न्यायालय को संतुष्ट होना चाहिए कि मामले में विधि का एक सारवान प्रश्न अंतर्गस्त है, न कि केवल विधि का एक प्रश्न। मामले के निर्णय पर भौतिक प्रभाव डालने वाला विधि का एक प्रश्न (अर्थात्, एक प्रश्न जिसका उत्तर वाद के पक्षकारों के अधिकारों को प्रभावित करता है) विधि का एक सारवान प्रश्न होगा, यदि वह विधि के किसी विशिष्ट उपबंधों या बाध्यकारी मिसालों से उभरते स्थापित कानूनी सिद्धांत के अंतर्गत नहीं आता है और इसमें एक विचारणीय कानूनी मुद्दा अंतर्गस्त है। विधि का एक सारवान प्रश्न इसके विपरीत स्थिति में भी उठेगा, जहाँ कानूनी स्थिति स्पष्ट है, या तो विधि के स्पष्ट उपबंधों के कारण या बाध्यकारी मिसालों के कारण, लेकिन अधीनस्थ न्यायालय ने ऐसे कानूनी सिद्धांत की अनदेखी करके या उसके विपरीत कार्य करके मामले का फैसला किया है। दूसरे प्रकार के मामलों में, विधि का सारवान प्रश्न इसलिए नहीं उठता कि कानून अभी भी विचारणीय है, बल्कि इसलिए उठता है क्योंकि एक भौतिक प्रश्न पर दिया गया निर्णय, विधि की स्थापित स्थिति का उल्लंघन करता है।

32.3. सामान्य नियम यह है कि उच्च न्यायालय अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा निकाले गए तथ्यों के निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं करेगा। लेकिन यह एक पूर्ण नियम नहीं है। कुछ अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त अपवाद वे हैं जहाँ (i) अधीनस्थ न्यायालयों ने भौतिक साक्ष्य की अनदेखी की है या बिना किसी साक्ष्य के कार्य किया है; (ii) न्यायालयों ने विधि का गलत अनुप्रयोग करके प्रमाणित तथ्यों से गलत अनुमान लगाए हैं; या (iii) न्यायालयों ने सबूत का बोझ गलत तरीके से डाला है। जब हम 'बिना किसी साक्ष्य पर आधारित निर्णय' का उल्लेख करते हैं, तो यह न केवल उन मामलों को संदर्भित करता है जहाँ साक्ष्य की कुल कमी है, बल्कि किसी भी ऐसे मामले को भी संदर्भित करता है, जहाँ साक्ष्य को समग्र रूप से लेने पर, वह निष्कर्ष का समर्थन करने में यथोचित रूप से सक्षम नहीं है।

33. इस मामले में, यह नहीं कहा जा सकता कि प्रथम अपीलीय न्यायालय ने बिना किसी साक्ष्य के कार्य किया। उच्च न्यायालय के समक्ष अपनी द्वितीय अपील में प्रत्यार्थियों ने किसी भी ऐसे भौतिक साक्ष्य

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



का उल्लेख नहीं किया जिसकी प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा अनदेखी की गई हो। प्रत्यार्थी यह भी नहीं दिखा सके कि प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा विधि का गलत अनुप्रयोग करके प्रमाणित तथ्यों से कोई गलत अनुमान लगाया गया था।”

17. इस मामले के मूल अभिलेख इस न्यायालय के समक्ष हैं।

18. वादी/अपीलार्थी द्वारा दायर वाद पत्र में, उसने स्वयं को 'वाद की भूमि' का किरायेदार होने का दावा किया है और नगर महापालिका कानपुर स्वामी थी और इसे वादी को वार्षिक लगान के आधार पर कृषि उद्देश्य के लिए किराए पर दिया गया था।

19. वादी ने किराए पर देने और लगान के भुगतान के आधार पर अपना मामला इस रूप में प्रस्तुत नहीं किया है कि वह वाद की भूमि का असामी बन गया।

20. उपर्युक्त परिस्थितियों में, न्यायालय नगर महापालिका, कानपुर नगर यानी प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से दायर लिखित कथन को संज्ञान में लेता है, जिसमें इस बात से स्पष्ट रूप से इनकार किया गया था कि वादी उक्त प्रतिवादी का किरायेदार था और अतिरिक्त अभिवाक् में यह भी कहा गया था कि वाद की भूमि को भूमि अधिग्रहण पंचाट (अवार्ड) दिनांक 20.4.1946 के अनुसार कानपुर नगर की विकास योजना के लिए अधिग्रहित किया गया था, इस प्रकार वाद की भूमि का अधिकार, हक और हित विशेष रूप से प्रतिवादी में निहित है।

21. प्रतिवादी ने वाद की भूमि को फसली वर्ष 1372 में केवल एक वर्ष के लिए खेती के लिए अनुज्ञप्तिधारी के रूप में दिया था, जिसके लिए वादी/अपीलार्थी ने किराए का भुगतान किया है, लेकिन वादी बाद में अतिक्रामक के रूप में अवैध तरीके से वाद की भूमि के कब्जे में था।

22. प्रतिवादी ने लिखित कथन में यह स्वीकार नहीं किया है कि वादी असामी था।

23. विद्वान विचारण न्यायालय ने यह विशिष्ट निष्कर्ष देते हुए वाद को खारिज कर दिया है कि वादी एक फसली वर्ष के लिए प्रतिवादियों का अनुज्ञप्तिधारी था और उसके बाद उसकी स्थिति बेदखल किए जाने योग्य एक अतिक्रामक की थी।

24. उपर्युक्त निष्कर्षों को प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा बरकरार रखा गया था, हालांकि असामी के एक मुद्दे पर विचार किया गया था, यद्यपि उक्त मुद्दा अभिवचनों से परे था कि वादी केवल फसली वर्ष 1372 के लिए असामी था और कब्जे की पश्चातवर्ती प्रकृति केवल अतिक्रामक की थी।

25. विद्वान विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा दिए गए उपर्युक्त सहवर्ती निष्कर्षों को संज्ञान में लेने के बाद, अपीलार्थियों द्वारा विरचित और इस न्यायालय द्वारा स्वीकार किए गए विधि के प्रश्नों को विधि का सारवान प्रश्न नहीं माना जा सकता, क्योंकि वादी ने कभी भी स्वयं को

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



असामी घोषित नहीं किया है। उसका मामला यह था कि वह एक किरायेदार था और उसने कभी भी प्रतिवादियों के स्वामित्व पर विवाद नहीं किया, इसलिए, यह प्रतिवादियों द्वारा यह स्वीकार करने का मामला नहीं था कि वादी एक असामी था।

26. यह केवल इस आधार पर प्रथम अपीलीय न्यायालय का एक संप्रेक्षण था कि प्रतिवादी ने वाद की भूमि को वादी को फसली वर्ष 1372 की एक छोटी अवधि के लिए किराए पर दिया था और उसके बाद नहीं। अन्यथा भी, वादी ने रिकॉर्ड पर ऐसा कोई दस्तावेज नहीं रखा है जिसे पट्टा माना जा सके, इसलिए केवल लगान की रसीदों के आधार पर वादी को किरायेदार नहीं माना जा सकता है। उनके कब्जे को अधिक से अधिक एक विशेष अवधि के लिए अनुज्ञप्तिधारी कहा जा सकता है और उसके बाद उसका कब्जा एक अतिक्रामक के रूप में था, इसलिए, न्यायालय पाता है कि उपर्युक्त संदर्भित दो प्रश्न विधि के सारवान प्रश्न नहीं हैं।

27. यह प्रतिवादी द्वारा यह स्वीकार करने का मामला नहीं था कि वादी एक असामी था। यह भी भली-भांति स्थापित है कि अभिवचनों से परे कोई साक्ष्य नहीं दिया जा सकता है। (देखें विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से श्रीनिवास राघवेंद्रराव देसाई (मृतक) बनाम वी. कुमार वामनराव उर्फ आलोक और अन्य **2024** आईएनएससी **165**)। अन्यथा भी, प्रतिवादी की ओर से यदि कोई स्वीकृति है तो वह सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 12 नियम 6 के तहत आवश्यक 'स्वीकृति' नहीं है क्योंकि यह स्पष्ट, असंदिग्ध, सुस्पष्ट और बिना शर्त होनी चाहिए, जो कि वर्तमान मामले में नहीं है और प्रथम अपीलीय न्यायालय ने इस मुद्दे पर विस्तार से विचार किया है और इसमें कोई अवैधता नहीं है कि यह निष्कर्ष दिया गया कि वादी केवल एक अनुज्ञप्तिधारी था।

28. न्यायालय ने चंद्रभान (उपर्युक्त) की कसौटी पर उपर्युक्त संदर्भित विधि के प्रश्नों का भी परीक्षण किया और पाया कि उपर्युक्त संदर्भित दो प्रश्न विधि के सारवान प्रश्न नहीं हैं, जिन पर वर्तमान द्वितीय अपीलों में विचार किया जा सके।

29. न्यायालय उच्चतम न्यायालय द्वारा रविंद्रनाथ पाणिग्रही बनाम सुरेंद्र साहू, **2025** आईएनएससी **333** के मामले में पारित एक निर्णय को भी संज्ञान में लेता है, और उसका यह मत है कि वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, विद्वान विचारण न्यायालय के साथ-साथ प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा दिए गए सहवर्ती निष्कर्षों को उलटने के लिए कोई परिस्थितियां मौजूद नहीं हैं (यह भी देखें मूर्ति और अन्य बनाम सी. सारदाम्बल और अन्य, **(2022) 3 एससीसी 209** और हीरो विनोद (नाबालिग) बनाम शेषम्माल, **2006 (5) एससीसी 545**)।

30. वर्तमान द्वितीय अपील तदनुसार खारिज की जाती है। अंतरिम आदेश, यदि कोई हो, समाप्त किया जाता है।

(सौरभ श्याम शमशेरी, न्यायमूर्ति)

25 फरवरी, 2026

एसबी

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



Translated version. Not for Legal Use.

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु हैं और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"